International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति

पूनम देवी
हिन्दी विभाग
रोहतक, हरियाणा

भूमिका– वस्तुतः राष्ट्रीयता वह भावना है जो राष्ट्र की जनता को संगठित करती है तथा राष्ट्रहित के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना को जन्म देती है। बाबू गुलाबराय के अनुसार राष्ट्रीयता का आधार विचारमूलक अवश्य है, किन्तु वह भावना मूलक अधिक है। केवल भू–खण्ड, वहाँ के निवासी एवं उनका रहन–सहन ही राष्ट्र नहीं होता, वरन् राष्ट्र में रहने वालों के हृदय में राष्ट्र के प्रति असीम श्रद्धा एवं सर्वस्व न्यौछावर कर देने की अनुभूति होना परम आवश्यक है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के अनुसार – 'जिस प्रकार मानव हृदयों में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोभाव विकसित और उन्नत होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीय भावना भी मानवों के हृदय में विकसित, आलोड़ित एवं उन्नत होती है।'[1]

गिरा अरथ जल बीचि सम
कहियत भिन्न न भिन्न।

अर्थात् जिस प्रकार शब्द और अर्थ भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं, उसी प्रकार राष्ट्र और राष्ट्रीयता परस्पर अभिन्न हैं। किसी भी भू–भाग में रहने वाले व्यक्ति और उनकी संस्कृति से राष्ट्र का निर्माण होता है। किसी भी देश की भौगोलिक सीमा के भीतर निवासित जन–समूह की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना के समन्वित रूप को राष्ट्रीयता कहा जाता है।

इस प्रकार राष्ट्रीयता अनुभूतिजन्य है। इसमें मनुष्य की राष्ट्र के प्रति सर्वोत्तम निष्ठा रहती है। यही निष्ठा मनुष्यों के समूह को राष्ट्र–रूप में संगठित करती है। राष्ट्रीयता मनुष्य के अन्तरतम् की श्रेष्ठतम रचना है। इसमें स्वदेश के प्रति प्रेम के साथ–साथ स्वदेशवासियों के प्रति भी प्रेम का भाव रहता है। केवल देश ही नहीं, अपितु देश की

संस्कृति के प्रति भी अटूट आस्था होती है। राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत व्यक्ति जातिगत भेदभाव को विस्मृत कर राष्ट्र के उत्थान, विकास, सम्मान व रक्षा के प्रति सचेत रहता है। साम्प्रदायिकता की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर मानव राष्ट्र के समान ही उदार एवं स्वतन्त्र मनोवृत्ति वाला होता है। हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य से आशय उस काव्य–प्रवाह से है, जो इस सदी के उस काल में सामाजिक उत्थान, राजनीतिक जागरण एवं नव–निर्माण की प्रबल चेतना से स्फूर्त हो भारतेन्दु साहित्य में प्रस्फुटित होकर द्विवेदी युग में फैला। वैसे तो राष्ट्रीयता का प्रथम उन्मेष सन् 1857 के विद्रोह में ही हो चुका था, किन्तु सन् 1858 के राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म एवं तिलक की 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' उद्घोषणा के थपेड़े से वेग पकड़ती हुई गांधी जी के असहयोग आन्दोलनों के रूप में सुलगते–सुलगते वही चिंगारी सन् 1942 में विध्वंसक ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ी।'[2]

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की मशाल लेकर चलने वाली टोलियों के प्रतिनिधि कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मैथिलीशरण गुप्त आदि प्रमुख थे। राष्ट्रीय चेतना की जो चिंगारी गुप्त जी के काव्य में फूटी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। बाबू गुलाबराय ने भी स्वीकार किया है – गुप्त जी की कविता में राष्ट्रीयता एव गांधीवाद की प्रधानता है। राष्ट्रीयता की इसी परम्परा को अग्रसरित करने वाले दिनकर वस्तुतः दिनकर' ही हैं। वे तत्युगीन युवा क्रान्तिकारियों के समर्थक एवं गांधीयुगीन विद्रोही राष्ट्रीय चेतना के वाहक साहित्य सृष्टा है।

दिनकर के क्रान्तिकारी एवं विद्रोही व्यक्तित्व निर्माण में बिहार एवं बंगाल के क्रान्तिकारी युवकों द्वारा सृजित विस्फोटक वातावरण का विशेष योगदान रहा है। कवि ने चक्रवाल' की भूमिका में लिखा है – 'राष्ट्रीयता मेंरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी। उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है।'[3] इससे ज्ञात होता है कि बिहार और बंगाल की विद्रोही राष्ट्रीय चेतना ने कवि के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वभावतः भावुक होते हुए भी वातावरण जन्य संस्कारों ने उन्हें उद्दीप्त क्रान्तिकारी बना ही दिया।

दिनकर द्वारा रचित रेणुका, हुंकार, द्वन्द्वगीत, कुरुक्षेत्र, चक्रवाल, सामधेनी, दिल्ली, परशुराम की प्रतीक्षा आदि काव्यग्रन्थ उनके देशप्रेम एवं राष्ट्र को समर्पित हृदय के परिचायक है। उनकी प्रारम्भिक रचना 'ताण्डव' का हाहाकार दृष्टव्य है –

'पहरें प्रलय–प्रयोग गगन में, / अंध धूम हो व्याप्त भुवन में / बरसे आग बहें मलयानिल / मचे त्राहि जग के आँगन में / फटे अतल पाताल, / धँसे जग, उछल–उछल कूदे भूधर /नाचो हे नाचो नटवर।'(रेणुका 2)

रेणुका का यह क्रान्ति–स्वर 'हुंकार में पहुँच कर आत्म संतुलन खो बैठा। दिनकर की आत्मा चीत्कार कर उठी – नहीं जीते जी सकता देख/विश्व में झुका तुन्हारा भाल/ वेदना–मधु का भी कर पान / आज उगलूंगा गरल कराल।'(हुंकार–10)

दिनकर के क्रान्तिकारी, ओजस्वी स्वर पर बंगाल, बिहार के क्रान्तिकारी युवकों एवं सन् ..... के जन–विद्रोह व आजाद हिन्द फौज के मुक्ति अभियान का भी अमिट प्रभाव है। जनता जगी हुई है, कविता में मुक्ति की बाजी जीतने के लिए जीवन दाँव पर लगाने के लिए कवि की वाणी से सहज ही प्रस्फुटित हुआ है – 'खेल मरण का खेल / मुक्ति की यह पहली बाजी है।/सिर पर उठा ब्रज,/आँखों पर ले हरि का अभिशाप,/अग्नि–स्नान के बिना धुलेगा नहीं राष्ट्र का पाप।'(परशुराम) अर्थात् दिनकर के काव्य में राष्ट्र प्रेम का स्वर मात्र नारेबाजी या उपदेश नहीं, क्रियाशीलता का ही दूसरा नाम है। 'दिनकर के राष्ट्रीय काव्य–व्यक्तित्व का जिस युग में गठन हुआ, वह भारतीय इतिहास का सर्वाधिक प्रवृत्तिमय, क्रान्तिकारी एवं राजसत्ता के विरूद्ध व्यापक संघर्ष का युग था। इसी बाहरी क्रान्ति, बलिदान, षड्यन्त्र एवं विस्फोटक स्थिति ने कवि–व्यक्तित्व को आक्रान्त किया। वह युग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से अनगिनत असंगतियों को चिपकाये हुए राष्ट्र की शक्ल को मलिन बनाते हुए जी रहा था। चूंकि कवि अपने युग का दृष्टा और सृष्टा होता आया है। इस दृष्टि से यौवन और पौरुष का कवि दिनकर क्रान्ति और विध्वंस के आह्वान द्वारा भी नवसर्जना की प्रेरणा देता रहा है। राष्ट्र की प्रतिभा को लांछित करने

वाले युगीन प्रश्नों पर उसकी पैनी दृष्टि रही है। इसका आभास हमें 'वन फूलों की ओर', 'कविता की पुकार' और 'बागी' रचना से चल जाता है – 'लाखों क्रोंच कराह रहे हैं, जाग आदि कवि की कल्याणी।/फूट–फूट तू कवि–कंठों से, बन व्यापक निज युग की वाणी।''(रेणुका–32)

संस्कृति किसी भी देश की और जाति की अमूल्य धरोहर होती है। दिनकर के काव्य में प्राचीन संस्कृति का स्मरण एवं वर्तमान कारुणिक दशा का अद्‌भुत संगम दिखायी पड़ता है। दिनकर की राष्ट्रीय चेतना वास्तव में वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओं के निदान में सलंग्न है। पराधीन काल में दिनकर की कविताओं का मूल स्वर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति आक्रोश का था। राष्ट्रीय कवि के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए उन्होंने भी इतिहास को काव्य का विषय बनाया और अतीत के पट पर वर्तमान का चित्र अंकित करने की सफल चेष्टा भी की। उनकी कविताएँ उनके हृदय में सुलगती वेदना की ज्वाला ही है – 'क्रान्ति धात्री? उठ जाग/आडम्बर में आग लगा दे।/पतन, पाप, पाखण्ड जलें/जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।' और भी – 'न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिलें, तो लड़ के/तेजस्वी छीनते समर को जीत, या कि खुद मर के।'

दिनकर के राष्ट्रीय प्रेम से ओत–प्रोत व्यक्तित्व का निर्माण भारतीय इतिहास के क्रान्तिकारी एवं राजसत्ता के विरूद्ध छिड़े व्यापक संघर्षशील युग में हुआ। दिनकर की पैनी दृष्टि एवं पौरुषपूर्ण कवि मन श्रमिक वर्ग की विवशता, कृषक की दयनीय दशा एवं सामाजिक विषमता के प्रति चीत्कार कर उठा है –

'श्वानों को मिलता दूध–वस्त्र, भूखे बच्चे अकुलाते हैं।
माँ की छाती से चिपक ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।
नारी की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं–
मालिक तब तेल–फुलेलों पर पानी–सा द्रव्य बहाते हैं।'

अन्त में कवि बच्चों के दूध के लिये स्वर्ग पर धावा बोल देता है, वह कहता है–

'हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
'दूध–दूध' ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।''(हुंकार–13)

दिनकर ने समस्त विषमाओं एवं भावों का मूल पूंजीवाद माना है। कवि का गहरा व्यंग्य दृष्टव्य है – 'धन–पिशाच के कृषक–मेघ में नाच रही पशुता मतवाली।/आंगतुक पीते जाते हैं, दीनों के शोणित की प्याली।'(रेणुका–32)

भारतीय जनमानस में आजादी को लेकर देखे गए स्वप्न उस समय टूट कर बिखर गये जब एक ओर सरदार भगतसिंह को फांसी पर लटकाया गया और दूसरी तरफ शासकों के स्वागत में दिल्ली को दुल्हन की तरह सजाया गया। दिनकर यह सहन न कर पाये और बरबस उनकी कलम में निम्नलिखित पंक्तियाँ कागज पर उतर पड़ी – 'मरघट में तू साज रही दिल्ली कैसे श्रृंगार?/यह बहार की स्वांग अरी इस उजड़े हुए चमन में।'(हुंकार–44)

हिन्दी के आधुनिक कवि जाति बंधन में न बंधकर विश्वबंधुत्व एवं सुरसरि सम सब कर हित होई जैसी मानवतावादी चेतना से अनुप्राणित रहे। दिनकर भी इससे अछूते नहीं है। उनकी राष्ट्रीयता प्रदेश से देश और व्याप्क विश्व की दिशा में प्रयाण करती रही है। दिनकर का काव्य उदात्त राष्ट्रीयता के समस्त तत्वों से सरोबार है। कुरुक्षेत्र में दिनकर ने युद्ध एवं हिंसा को घृणित कर्म माना तथा इसके स्थान पर विश्व मैत्री, त्याग एवं सच्ची शान्ति को आवश्यक मानकर लिखा है – 'सच्ची शान्ति राज्य करती है/तन पर नहीं हृदय पर/नर के ऊँचे विश्वासों पर/ श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर। तथा समाज में समता एवं सद्भाव को स्थापित करने का महान संदेश दिया – जब तक मनुज–मनुज का यह/सुख भाग नहीं सम होगा।/शमित न होगा कोलाहल–/संघर्ष नहीं कम होगा।'(कुरुक्षेत्र–87)

सारांश– निष्कर्षतः दिनकर को राष्ट्रीय कवि की संज्ञा से विभूषित करना एकांगी तथ्य नहीं है। उनके काव्य में राष्ट्रीयता की वह अजस्र धारा प्रवाहित है जिसमें शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, दया एवं अपनत्व है तथा शोषक व सामाजिक विषमताओं के प्रति आक्रोश

है। उनके काव्य में जन सामान्य के प्राणों को उद्वेलित करने की अद्भुत क्षमता है। कवि की इसी मानवतावादी राष्ट्रीयता को दृष्टिगत रखते हुए आलोचक उन्हें राष्ट्रीय काव्य का युग चारण मानते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार – 'दिनकर की राष्ट्रीयता बहुत गतिशील, संश्लिष्ट एवं उदार है – उसमें तात्कालिकता, परम्परा, राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, मानवता, भावनाशीलता, वैचारिकता का अद्भुत समन्वय है।'[4] अन्ततः दिनकर एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने सदैव परिस्थितियों के अनुकूल काव्य–सृजन करके राष्ट्र के भावों को मुखरित किया एवं न केवल राष्ट्रीय समस्याओं को चित्रित किया, वरन् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया।

संदर्भ–सूची–

1. प्रभा, मार्च 1924, पृ. 231
2. दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय तत्व – डॉ. अवधनारायण त्रिपाठी, पृ. 41
3. दिनकर – चक्रवाल : भूमिका, पृ. 33
4. डॉ. रामदरश मिश्र – हिन्दी कविता : तीन दशक, पृ. 69